किय गय ह।

श्रीमद्भगवद्गीता के द्वितीय अध्याय के आधार पर सांख्ययोग और कर्मयोग का निरूपण करें।

गीता के आधार पर सांख्य क्या है निरूपित करें।

उत्तर– आदिकवि वाल्मीकि के बाद विश्व साहित्य के रससिद्ध काव्य कोकिल महर्षि वेदव्यस का प्रार्दुभाव हुआ है। अर्थात् महामुनि वाल्मीकि के सहस्राब्दियों बाद वीणा की आराधना इसके सम्पूर्ण अंगों-अवयवों का विभिन्न कृतियों के रूप में प्रणयन कर संसार में सदाचार, सद्ज्ञान, सद्भाव इत्यादि की दीपशिखा की भाँति अलोकित करने हेतु महर्षि वेदव्यास का इस वसुंधरा पर आगमन हुआ।

वेदों से लेकर पुराण, स्मृति उपनिषदों, अर्थात् मंत्र, ब्राह्मण एवं कर्मकाण्ड तथा उपासना अरण्यकों तक की सृष्टि महामुनि ने अपनी लेखनी द्वारा की है। इन्हीं कृत्तियों में से महामुनि की एक कृति गीता भी है जो अकेली विश्व के सम्पूर्ण साहित्य का चूड़ान्त निदर्शन बनी हुई है। स्वयं इन्होंने इस कृत्ति की महिमा का गुणगान करते हुए लिखा है कि–

''गीता सुगीता कर्त्तव्या किमन्यै शास्त्र विस्तरै:।
या स्वयं पद्मनाभस्य मुखपद्माद्विनि:सृता:।।''

अर्थात् गीता सुगीता करने योग्य है, अर्थात् श्री गीता को भलिभाँति पढ़कर अर्थ और भाव सहित अन्त:करण में धारण कर लेना ही मुख्य कर्त्तव्य है जो कि स्वयं श्री पद्मनाभ विष्णु भगवान के मुखाकरबिन्द से निकली हुई है। इस गीताशास्त्र में मानवमात्र का सर्वाधिकार है, चाहे जो जैसे और जिस अवस्था में क्यों न हो, इस काव्य का अध्ययन कर मनुष्य कुत्सित कर्मों का परित्याग कर सत्कर्म की ओर प्रेरित होता है।

यह शास्त्र गृहस्थ को अपने धर्म अर्थात् कर्त्तव्य पालन की शिक्षा देता है तो वानप्रस्थी को वैराग्य की ओर अग्रसर करता है। अतएव मनुष्य मात्र का यह परम कर्त्तव्य है कि श्रद्धा युक्त होकर इसका पठन, मनन करते हुए भगवद् आज्ञानुसार उसे कर्त्तव्य में संलग्न हो जाना चाहिए, क्योंकि अति दुर्लभ मानव शरीर को प्राप्त कर अपने अमूल्य समय का एक क्षणभी क्षणभंगुर भोगों को भोगने में नष्ट करना उचित नहीं है। इस अनुपम और अद्वितीय काव्य ग्रन्थ ने अपनी मुक्ति अर्थात् परमपद को प्राप्त करने के लिए दो मार्गों को बताया है–

(1) पहला मार्ग तो सांख्ययोग अर्थात् गुणविभाग सन्यास योग या ज्ञान योग इत्यादि नामों से पुकारा जाता है और (2) दूसरा कर्मयोग अर्थात् निष्काम् कर्मयोग, समत्वयोग, बुद्धियोग, तदर्थकर्म, मदर्थकर्म, मत्कर्म इत्यादि अनेकविध नामों से भी जाना जाता है।

सम्पूर्ण पदार्थ क्षणभंगुर नाशवान अर्थात् मृगतृष्णा के जल की तरह अथवा सृष्टि के समान स्वप्नवत् मायामय होने से माया के कार्यरूप सभी गुण ही गुणों में रहते हैं। इस तरह मन, इन्दियों और शरीर द्वारा होनेवाले सभी कर्मों में कर्त्तापन के अहंकार से शून्य होना एवं

सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन भगवान वासुदेव के अलावा अन्य दूसरे किसी को भी रहने का विचार नहीं होना ही सांख्ययोग है। अर्थात् श्रेय मार्ग अर्थात् अवलंब मात्र ईश्वर को ही समझना सांख्ययोग कहलाता है। Wordsworth के शब्दों में—"Everything is God."

भगवान श्री कृष्ण ने स्वयं कहा है कि "योगिनामेव कुले भवति धीमताम्" अर्थात् वैराग्यवान पुरुष भी उन लोकों में न जाकर ज्ञानवान् योगियों के ही कुल में जन्म लेता है। तथा अर्जुन को भी सांख्ययोगी बनने की प्रेरणा देते हुए अपने को ही स्मरण करते रहने की प्रेरणा देते हैं और कहते हैं कि—

"सर्वधर्मान् परित्यज्य मानेकं शरणंब्रज:।"

अर्थात् "हे अर्जुन सभी धर्मों को छोड़कर हमारे ही अनन्य शरण में आओ।"

माया से उत्पन्न हुये सम्पूर्ण गुण ही गुणों में वर्तते हैं ऐसा समझकर तथा मन, इन्द्रिय और शरीर द्वारा होनेवाली सम्पूर्ण क्रियाओं में कर्त्तापन के अभिमान से रहित होकर सर्वव्यापी सच्चिदानन्दघन परमात्मा में एकीभाव से स्थित रहने का नाम ही ज्ञान, सन्यास, या सांख्य योग है। सांख्ययोग केवल सन्यासियों के लिये ही हैं यह मानना सर्वथा अनुचित ही है क्योंकि भगवान् ने गीता के दूसरे अध्याय में श्लोक 11 से 30 तक सांख्यनिष्ठा का उपदेश देते हुये अर्जुन को युद्ध अर्थात् कर्त्तव्य पालन करने की शिक्षा (उपदेश) दी है।

"अशोच्यानन्वशोचस्त्वं प्रज्ञावादांश्च भाषसे।
गतासूनगतासूंश्च नानुशोचन्ति पण्डिता:।।"

अर्थात् हे अर्जुन तु न शोक करने के योग्यों के लिये शोक करता है और पण्डितों के जैसे वचनों को कहता है, परन्तु पण्डितजन जिनके प्राण चले गये हैं उनके लिये और जिनके प्राण नहीं गये हैं उनके लिये भी नहीं शोक करते हैं।

सर्दी गर्मी और सुख-दु:ख को देनेवाले इन्द्रिय और विषयों के संयोग तो क्षणभंगुर और अनित्य हैं। दु:ख-सुख को समान समझने वाले जिस धीर पुरुष को यह इन्द्रियों के विषय व्याकुल नहीं कर सकते हैं वही मोक्ष अर्थात् परमपद के लिए योग्य होता है।

साहित्यरसिकों के लिये ही नहीं दर्शनशास्त्रियों के लिये भी चिन्तन का आधार स्तम्भ यह श्लोक दृष्टव्य है यथा—

"नासतो विद्यते भावो नाभावो विद्यते सत:
उभयोरपि दृष्टिऽन्तस्त्वनयोस्तत्त्व दर्शिभि: ॥16॥" द्वितीय अध्याय

अर्थात असत् वस्तु का तो कोई अस्तित्व नहीं है और सत् का अभाव नहीं है। इस प्रकार इन दोनों का ही तत्व (रहस्य) ज्ञानी पुरुषों के द्वारा देखा गया है। और इस प्रकार सम्पूर्ण संसारिक पदार्थ ही जिससे परिव्याप्त हैं वह नाशरहित है और इसका कभी विनाश नहीं होता है। और यह जीवात्मा भी नाशरहित और नित्यस्वरूप का है, केवल इस शरीर का ही क्षय होता है। अत: तुम युद्ध करो। और यह आत्मा तो नित्य शास्वत और विनाश रहित है। इस आत्मा को नाशरहित नित्य अजन्मा अव्यय तथा अव्यक्त जानना चाहिये।

सांख्यशास्त्रानुसार ही यह आत्मा अव्यक्त अर्थात् इन्द्रियों का अविषय है, यह आत्मा अचिन्त्य अर्थात् मन का अविषय है और यह आत्मा विकाररहित अर्थात् न बदलने वाला है।

यथा— *"अव्यक्तोऽयमचिन्त्योऽयमविकार्योऽयमुच्यते।*
तस्मादेवं विदित्वैनं नानुशोचितुर्महसि।।"

कोई महापुरुष ही आत्मा को आश्चर्य की तरह देखता है और वैसे ही दूसरा कोई महापुरुष ही आश्चर्य की तरह इसके तत्व को कहता है और दूसरा कोई ही इस आत्मा को आश्चर्य की तरह सुनता है और कोई-कोई सुनकर भी इस आत्मा को नहीं जानते हैं।

आत्मा की नित्यता का निरुपण करते हुये उसके लिये शोक नहीं करने की सलाह दे रहे हैं।

यथा— *''देही नित्यमवध्योऽयं देहे सर्वस्य भारत।*
तस्मात्सर्वाणि भूतानि न त्वं शोचितुमर्हसि ॥ 30 ॥'' द्वितीय अध्याय

अर्थात् हे अर्जुन यह आत्मा अबध्य सबके शरीर में विद्यमान है। इस लिये सम्पूर्ण भूतप्राणियों के लिये तुम शोक करने के योग्य नहीं है। या तो मरकर स्वर्ग को प्राप्त होगा, अथवा जीतकर पृथ्वी को भोगेगा, अतः हे अर्जुन युद्ध के लिये निश्चयवाला होकर खड़े हो जाओ। सुख दुःखादि को एक समान समझकर युद्ध करने से तुम्हें पाप नहीं लगेगा।

और इस प्रकार कहने के उपरान्त भगवान हँसते हुये कहते हैं कि—

''ऐषा तेऽभिहिता सांख्ये बुद्धिर्योगे त्विमां श्रृणु।
बुद्धया युक्तो यया पार्थ कर्मबन्धं प्रहास्यसि॥''

अर्थात् हे पार्थ ''यह बुद्धि तेरे लिये ज्ञानयोग (सांख्ययोग) के विषय में कही गयी है और अब इसी को तुम निष्काम कर्मयोग के विषय में सुन कि जिस बुद्धि से युक्त हुआ तुम कर्मों के बन्धन को अच्छी तरह से नाश करेगा।'' और पुनः वे कहते हैं कि इस संसार में दो प्रकार की निष्ठा अर्थात् साधन की परिपक्व अवस्था अर्थात् पराकण्ठा मेरे द्वारा तुम्हें कही गयी है जो ज्ञानियों के लिये ज्ञान योग अर्थात् सांख्ययोग है और योगियों के लिये निष्काम कर्मयोग है।

और सब कुछ भगवान का समझकर सिद्धि, असिद्धि में समत्वभाव रखते हुये आसक्ति और फल की इच्छा का त्याग करके भगवत् आज्ञानुसार केवल भगवान के ही लिये सब कर्मों का आचरण करना तथा श्रद्धा, भक्तिपूर्वक मन, वाणी और शरीरों से सब प्रकार भगवान् के शरण होकर नाम, गुण और प्रभाव सहित उनके स्वरूप का निरन्तर चिन्तन करना ही निष्काम कर्मयोग के साधन हैं।

परन्तु कर्मयोग का साधन तो सन्यास आश्रम में नहीं बन सकता है क्योंकि सन्यास आश्रम में कर्मों के स्वरूप का भी त्याग कहा गया है। परन्तु इसके विपरीत सांख्ययोग का साधन सम्पूर्ण आश्रमों में बन सकता है। सांख्यमार्ग का अधिकारी देहाभिमान से रहित होकर ही सुयोग्य बन पाता है। और सांख्य योग का साधन भलीं प्रकार में समझ जाने पर मनुष्य का श्रेय अर्थात् कल्याण या दूसरे शब्दों में मोक्ष (अपवर्ग) हो जाता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सांख्ययोग के अन्तर्गत—पृथ्वी, आकाश, वायु, अग्नि और जल सभी आ जाते हैं, इतना ही नहीं मनुष्य देह के पाँचों ज्ञानेन्द्रिय अर्थात् नाक, कान, आँख, त्वचा और चिह्वा भी सम्मिलित हो जाते हैं। मनुष्य के कर्मेन्द्रिय अर्थात्—हाथ, पैर, गुदा, इन्द्रिय और मुख भी इसमें मिल जाते हैं। दूसरे शब्दों में मन, बुद्धि, अहंकार, प्रकृत्ति और शब्दादि पांचों विषय भी सांख्ययोग के ही स्वरूप है।

अतः हम कह सकते हैं कि इन पच्चीस तत्वों को संख्या द्वारा परिगणित होने के कारण ही सांख्ययोग कहलाता है और आत्मा इन सांख्यों से भी परे है और ब्रह्म का ही दूसरा रूप यह आत्मा है। अतः सच्चा कर्मयोगी इन सम्पूर्ण तत्वों को छोड़कर केवल आत्मा से आत्मा में ही भासत, बोलता चलता है और ब्रह्म को प्राप्त होकर आनन्दमग्न अर्थात् कल्याण कर लेता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि सांख्ययोग कठिनतम होते हुए भी इस शास्त्र (गीता) में सरलतम रूप में वर्णित किया गया है। यही कारण है कि गीता का महत्व और भी अधिक हो जाता है।

—0—